योगसार पद्यानुवाद

(हरिगीत)

सब कर्ममल का नाश कर अर प्राप्त कर निज आत्मा।
जो लीन निर्मल ध्यान में नमकर निकल परमातमा।।१।।
सब नाश कर घनघाति अरि अरिहंत पद को पा लिया।
कर नमन उन जिनदेव को यह काव्यपथ अपना लिया।।२।।
है मोक्ष की अभिलाष अर भयभीत हैं संसार से।
है समर्पित यह देशना उन भव्य जीवों के लिए।।३।।
अनन्त है संसार-सागर जीव काल अनादि हैं।
पर सुख नहीं, बस दु:ख पाया मोह-मोहित जीव ने।।४।।
भयभीत है यदि चतुर्गति से त्याग दे परभाव को।
परमातमा का ध्यान कर तो परमसुख को प्राप्त हो।।५।।
बहिरातमापन त्याग जो बन जाय अन्तर-आतमा।
ध्यावे सदा परमातमा बन जाय वह परमातमा।।६।।
मिथ्यात्वमोहित जीव जो वह स्व-पर को नहिं जानता।
संसार-सागर में भ्रमें दृगमूढ़ वह बहिरातमा।।७।।
जो त्यागता परभाव को अर स्व-पर को पहिचानता।
है वही पण्डित आत्मज्ञानी स्व-पर को जो जानता।।८।।
जो शुद्ध शिव जिन बुद्ध विष्णु निकल निर्मल शान्त है।
बस है वही परमातमा जिनवर-कथन निर्भ्रान्त है।।९।।
जिनवर कहें 'देहादि पर' जो उन्हें ही निज मानता।
संसार-सागर में भ्रमें वह आतमा बहिरातमा।।१०।।
'देहादि पर' जिनवर कहें ना हो सकें वे आतमा।
यह जानकर तू मान ले निज आतमा को आतमा।।११।।

तू पायगा निर्वाण माने आतमा को आतमा।
पर भवभ्रमण हो यदी जाने देह को ही आतमा।।१२।।
आतमा को जानकर इच्छारहित यदि तप करे।
तो परमगति को प्राप्त हो संसार में घूमे नहीं।।१३।।
परिणाम से ही बंध है अर मोक्ष भी परिणाम से।
यह जानकर हे भव्यजन ! परिणाम को पहिचानिये।।१४।।
निज आतमा जाने नहीं अर पुण्य ही करता रहे।
तो सिद्धसुख पावे नहीं संसार में फिरता रहे।।१५।।
निज आतमा को जानना ही एक मुक्तीमार्ग है।
कोइ अन्य कारण है नहीं हे योगिजन ! पहिचान लो।।१६।।
मार्गणा गुणथान का सब कथन है व्यवहार से।
यदि चाहते परमेष्ठिपद तो आतमा को जान लो।।१७।।
घर में रहे जो किन्तु हेयाहेय को पहिचानते।
वे शीघ्र पावें मुक्तिपद जिनदेव को जो ध्यावते।।१८।।
तुम करो चिन्तन स्मरण अर ध्यान आतमदेव का।
बस एक क्षण में परमपद की प्राप्ति हो इस कार्य से।।१९।।
मोक्षमग में योगिजन यह बात निश्चय जानिये।
जिनदेव अर शुद्धातमा में भेद कुछ भी है नहीं।।२०।।
सिद्धान्त का यह सार माया छोड़ योगी जान लो।
जिनदेव अर शुद्धातमा में कोई अन्तर है नहीं।।२१।।
है आतमा परमातमा परमातमा ही आतमा।
हे योगिजन यह जानकर कोई विकल्प करो नहीं।।२२।।
परिमाण लोकाकाश के जिसके प्रदेश असंख्य हैं।
बस उसे जाने आतमा निर्वाण पावे शीघ्र ही।।२३।।
व्यवहार देहप्रमाण अर परमार्थ लोकप्रमाण है।
जो जानते इस भांति वे निर्वाण पावें शीघ्र ही।।२४।।

योनि लाख चुरासि में बीता अनन्ता काल है।
पाया नहीं सम्यक्त्व फिर भी बात यह निर्भ्रान्त है।।२५।।
यदि चाहते हो मुक्त होना चेतनामय शुद्ध जिन।
अर बुद्ध केवलज्ञानमय निज आतमा को जान लो।।२६।।
जबतक न भावे जीव निर्मल आतमा की भावना।
तबतक न पावे मुक्ति यह लख करो उसकी भावना।।२७।।
त्रैलोक्य के जो ध्येय वे जिनदेव ही हैं आतमा।
परमार्थ का यह कथन है निर्भ्रान्त यह तुम जान लो।।२८।।
जबतक न जाने जीव परमपवित्र केवल आतमा।
तबतक न व्रत तप शील संयम मुक्ति के कारण कहे।।२९।।
जिनदेव का है कथन यह व्रत शील से संयुक्त हो।
जो आतमा को जानता वह सिद्धसुख को प्राप्त हो।।३०।।
जबतक न जाने जीव परमपवित्र केवल आतमा।
तबतक सभी व्रत शील संयम कार्यकारी हों नहीं।।३१।।
पुण्य से हो स्वर्ग नर्क निवास होवे पाप से।
पर मुक्ति रमणी प्राप्त होती आत्मा के ध्यान से।।३२।।
व्रत शील संयम तप सभी हैं मुक्तिमग व्यवहार से।
त्रैलोक्य में जो सार है वह आतमा परमार्थ से।।३३।।
परभाव को परित्याग कर अपनत्व आतम में करे।
जिनदेव ने ऐसा कहा शिवपुर गमन वह नर करे।।३४।।
व्यवहार से जिनदेव ने छह द्रव्य तत्त्वारथ कहे।
हे भव्यजन ! तुम विधीपूर्वक उन्हें भी पहिचान लो।।३५।।
है आतमा बस एक चेतन आतमा ही सार है।
बस और सब हैं अचेतन यह जान मुनिजन शिव लहैं।।३६।।
जिनदेव ने ऐसा कहा निज आतमा को जान लो।
यदि छोड़कर व्यवहार सब तो शीघ्र ही भवपार हो।।३७।।

जो जीव और अजीव के गुणभेद को पहिचानता।
है वही ज्ञानी जीव वह ही मोक्ष का कारण कहा।।३८।।
यदि चाहते हो मोक्षसुख तो योगियों का कथन यह।
हे जीव! केवलज्ञानमय निज आतमा को जान लो।।३९।।
सुसमाधि अर्चन मित्रता अर कलह एवं वंचना।
हम करें किसके साथ किसकी हैं सभी जब आतमा।।४०।।
गुरुकृपा से जबतक कि आतमदेव को नहिं जानता।
तबतक भ्रमे कुत्तीर्थ में अर ना तजे जन धूर्तता।।४१।।
श्रुतकेवली ने यह कहा ना देव मन्दिर तीर्थ में।
बस देह-देवल में रहें जिनदेव निश्चय जानिये।।४२।।
जिनदेव तनमन्दिर रहें जन मन्दिरों में खोजते।
हँसी आती है कि मानो सिद्ध भोजन खोजते।।४३।।
देह देवल में नहीं रे मूढ़! ना चित्राम में।
वे देह-देवल में रहें सम चित्त से यह जान ले।।४४।।
सारा जगत यह कहे श्री जिनदेव देवल में रहें।
पर विरल ज्ञानी जन कहें कि देह-देवल में रहें।।४५।।
यदि जरा भी भय है तुझे इस जरा एवं मरण से।
तो धर्मरस का पान कर हो जाय अजरा-अमर तू।।४६।।
पोथी पढ़े से धर्म ना ना धर्म मठ के वास से।
ना धर्म मस्तक लुँच से ना धर्म पीछी ग्रहण से।।४७।।
परिहार कर रुष-राग आतम में वसे जो आतमा।
बस पायगा पंचमगति वह आतमा धर्मातमा।।४८।।
आयू गले मन ना गले ना गले आशा जीव की।
मोहस्फुरे हित नास्फुरे यह दुर्गति इस जीव की।।४९।।
ज्यों मन रमें विषयानि में यदि आतमा में त्यों रमें।
योगी कहें हे योगिजन ! तो शीघ्र जावे मोक्ष में।।५०।।

'जर्जरित है नरकसम यह देह' – ऐसा जानकर।
यदि करो आतम भावना तो शीघ्र ही भवपार हो।।५१।।
धंधे पड़ा सारा जगत निज आतमा जाने नहीं।
बस इसलिए ही जीव यह निर्वाण को पाता नहीं।।५३।।
परतंत्रता मन–इन्द्रियों की जाय फिर क्या पूछना।
रुक जाँय राग–द्वेष तो हो उदित आतम भावना।।५४।।
जीव पुद्गल भिन्न हैं अर भिन्न सब व्यवहार है।
यदि तजे पुद्गल गहे आतम सहज ही भवपार है।।५५।।
ना जानते–पहिचानते निज आतमा गहराई से।
जिनवर कहें संसार सागर पार वे होते नहीं।।५६।।
रतन दीपक सूर्य घी दधि दूध पत्थर अर दहन।
सुवर्ण रूपा स्फटिकमणि से जानिये निज आत्म को।।५७।।
शून्यनभसम भिन्न जाने देह को जो आतमा।
सर्वज्ञता को प्राप्त हो अर शीघ्र पावे आतमा।।५८।।
आकाशसम ही शुद्ध है निज आतमा परमातमा।
आकाश है जड़ किन्तु चेतन तत्त्व तेरा आतमा।।५९।।
नासाग्र दृष्टिवंत हो देखें अदेही जीव को।
वे जनम धारण ना करें ना पिये जननी–क्षीर को।।६०।।
अशरीर को सुशरीर अर इस देह को जड़ जान लो।
सब छोड़ मिथ्या–मोह इस जड़देह को पर मान लो।।६१।।
अपनत्व आतम में रहे तो कौन–सा फल ना मिले।
बस होय केवलज्ञान एवं अखय आनन्द परिणमे।।६२।।
परभाव को परित्याग जो अपनत्व आतम में करें।
वे लहें केवलज्ञान अर संसार–सागर परिहरें।।६३।।
हैं धन्य वे भगवन्त बुध परभाव जो परित्यागते।
जो लोक और अलोक ज्ञायक आतमा को जानते।।६४।।

सागार या अनगार हो पर आतमा में वास हो।
जिनवर कहें अति शीघ्र ही वह परमसुख को प्राप्त हो।।६५।।
विरले पुरुष ही जानते निज तत्त्व को विरले सुने।
विरले करें निज ध्यान अर विरले पुरुष धारण करें।।६६।।
सुख–दुःख के हैं हेतु परिजन किन्तु 'वे परमार्थ से।
मेरे नहीं' – यह सोचने से मुक्त हों भवभार से।।६७।।
नागेन्द्र इन्द्र नरेन्द्र भी ना आतमा को शरण दें।
यह जानकर हि मुनीन्द्रजन निज आतमा शरणा गहें।।६८।।
जन्मे–मरे सुख–दुःख भोगे नरक जावे एकला।
अरे! मुक्तीमहल में भी जायेगा जिय एकला।।६९।।
यदि एकला है जीव तो परभाव सब परित्याग कर।
ध्या ज्ञानमय निज आतमा अर शीघ्र शिवसुख प्राप्त कर।।७०।।
हर पाप को सारा जगत ही बोलता – यह पाप है।
पर कोई विरला बुध कहे कि पुण्य भी तो पाप है।।७१।।
लोह और स्वर्ण की बेड़ी में अन्तर है नहीं।
शुभ–अशुभ छोड़ें ज्ञानिजन दोनों में अन्तर है नहीं।।७२।।
हो जाय जब निर्ग्रन्थ मन निर्ग्रन्थ तब ही तू बने।
निर्ग्रन्थ जब हो जाय तू तब मुक्ति का मारग मिले।।७३।।
जिस भाँति बड़ में बीज है उस भाँति बड़ भी बीज में।
बस इसतरह त्रैलोक्य जिन आतम बसे इस देह में।।७४।।
जिनदेव जो मैं भी वही इस भाँति मन निर्भ्रान्त हो।
है यही शिवमग योगिजन! ना मंत्र एवं तंत्र है।।७५।।
दो तीन चउ अर पाँच नव अर सात छह अर पाँच फिर।
अर चार गुण जिसमें बसें उस आतमा को जानिए।।७६।।
'दो छोड़कर दो गुण सहित परमातमा में जो वसे।
शिवपद लहें वे शीघ्र ही' – इस भाँति सब जिनवर

क ह ं । । ७ ७ । ।
तज तीन त्रयगुण सहित नित परमातमा में जो वसे।
शिवपद लहें वे शीघ्र ही इस भाँति सब जिनवर कहें।।७८।।
जो रहित चार कषाय संज्ञा चार गुण से सहित हो।
तुम उसे जानों आतमा तो परमपावन हो सको।।७९।।
जो दश रहित दश सहित एवं दशगुणों से सहित हो।
तुम उसे जानो आतमा अर उसी में नित रत रहो।।८०।।
निज आतमा है ज्ञान दर्शन चरण भी निज आतमा।
तप शील प्रत्याख्यान संयम भी कहे निज आतमा।।८१।।
जो जान लेता स्व-पर को निर्भ्रान्त हो वह पर तजे।
जिन-केवली ने यह कहा कि बस यही संन्यास है।।८२।।
रतनत्रय से युक्त जो वह आतमा ही तीर्थ है।
है मोक्ष का कारण वही ना मंत्र है ना तंत्र है।।८३।।
निज देखना दर्शन तथा निज जानना ही ज्ञान है।
जो हो सतत वह आतमा की भावना चारित्र है।।८४।।
जिन-केवली ऐसा कहें - 'तहँ सकल गुण जहँ
अ ा त म ा । '
बस इसलिए ही योगीजन ध्याते सदा ही आतमा।।८५।।
तू एकला इन्द्रिय रहित मन वचन तन से शुद्ध हो।
निज आतमा को जान ले तो शीघ्र ही शिवसिद्ध हो।।८६।।
यदि बद्ध और अबद्ध माने बंधेगा निर्भ्रान्त ही।
जो रमेगा सहजात्म में तो पायेगा शिव शान्ति ही।।८७।।
जो जीव सम्यग्दृष्टि दुर्गति गमन ना कबहूँ करें।
यदि करें भी ना दोष पूरब करम को ही क्षय करें।।८८।।
सब छोड़कर व्यवहार नित निज आतमा में जो रमें।
वे जीव सम्यग्दृष्टि तुरतहिं शिवरमा में जा रमें।।८९।।

सम्यक्त्व का प्राधान्य तो त्रैलोक्य में प्राधान्य भी।
बुध शीघ्र पावे सदा सुखनिधि और केवलज्ञान भी।।९०।।
जहँ होय थिर गुणगणनिलय जिय अजर अमृत आतमा।
तहँ कर्मबंधन हों नहीं झर जाँय पूरब कर्म भी।।९१।।
जिसतरह पद्मनि-पत्र जल से लिप्त होता है नहीं।
जिनभावरत जिय कर्ममल से लिप्त होता है नहीं।।९२।।
लीन समसुख जीव बारम्बार ध्याते आतमा।
वे कर्म क्षयकर शीघ्र पावें परमपद परमातमा।।९३।।
पुरुष के आकार जिय गुणगणनिलय सम सहित है।
यह परमपावन जीव निर्मल तेज से स्फुरित है।।९४।।
इस अशुचि-तन से भिन्न आतमदेव को जो जानता।
नित्य सुख में लीन बुध वह सकल जिनश्रुत जानता।।९५।।
जो स्व-पर को नहिं जानता छोड़े नहीं परभाव को।
वह जानकर भी सकल श्रुत शिवसौख्य को ना प्राप्त हो।।९६।।
सब विकल्पों का वमन कर जम जाय परमसमाधि में।
तब जो अतीन्द्रिय सुख मिले शिवसुख उसी को जिन कहें।।९७।।
पिण्डस्थ और पदस्थ अर रूपस्थ रूपातीत जो।
शुभध्यान जिनवर ने कहे जानो कि परमपवित्र हो।।९८।।
'जीव हैं सब ज्ञानमय' - इस रूप जो समभाव हो।
है वही सामायिक कहें जिनदेव इसमें शक न हो।।९९।।
जो राग एवं द्वेष के परिहार से समभाव हो।
है वही सामायिक कहें जिनदेव इसमें शक न हो।।१००।।
हिंसादि के परिहार से जो आत्म-स्थिरता बढ़े।
यह दूसरा चारित्र है जो मुक्ति का कारण कहा।।१०१।।
जो बढ़े दर्शनशुद्धि मिथ्यात्वादि के परिहार से।
परिहारशुद्धी चरित जानो सिद्धि के उपहार से।।१०२।।

लोभ सूक्ष्म जब गले तब सूक्ष्म सुध–उपयोग हो।
है सूक्ष्मसाम्पराय जिसमें सदा सुख का भोग हो।।१०३।।
अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठी पण।
सब आतमा ही हैं श्री जिनदेव का निश्चय कथन।।१०४।।
वह आतमा ही विष्णु है जिन रुद्र शिव शंकर वही।
बुद्ध ब्रह्मा सिद्ध ईश्वर है वही भगवन्त भी।।१०५।।
इन लक्षणों से विशद लक्षित देव जो निर्देह है।
कोई अन्तर है नहीं जो देह–देवल में रहे।।१०६।।
जो होंयगे या हो रहे या सिद्ध अबतक जो हुए।
यह बात है निर्भ्रान्त वे सब आत्मदर्शन से हुए।।१०७।।
भवदुखों से भयभीत योगीचन्द्र मुनिवरदेव ने।
ये एकमन से रचे दोहे स्वयं को संबोधने।।१०८।।

जोइन्दु मुनिवरदेव ने दोहे रचे अपभ्रंस में।
[illegible]

भाई ! ये बननेवाले भगवान की बात नहीं है, यह तो बने–बनाये भगवान की बात है। स्वभाव की अपेक्षा तुझे भगवान बनना नहीं है, अपितु स्वभाव से तो तू बना–बनाया भगवान ही है – ऐसा जानना–मानना और अपने में ही जम जाना, रम जाना पर्याय में भगवान बनने का उपाय है। तू एक बार सच्चे दिल से अन्तर की गहराई से इस बात को स्वीकार तो कर; अन्तर की स्वीकृति आते ही तेरी दृष्टि पर–पदार्थों से हटकर सहज ही स्वभाव–सन्मुख होगी, ज्ञान भी अन्तरोन्मुख होगा और तू अन्तर में ही समा जायेगा, लीन हो जायेगा, समाधिस्थ हो जायेगा। ऐसा होने पर तेरे अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का ऐसा दरिया उमड़ेगा कि तू निहाल हो जावेगा, कृतकृत्य हो जावेगा। एक बार ऐसा स्वीकार करके तो देख। **– आत्मा ही है शरण, पृष्ठ–८३**